

# बलराज साहनी का साहित्यिक अवदान

बलराज अंग्रेजी साहित्य के एम.ए. थे। शांति निकेतन में प्राध्यापक रह चुके थे, बी.बी.सी. में उद्घोषक रहे और महात्मा गांधी के सेवामार्ग में काम किया। इप्ता से उनका गहरा नाता था। जीवन के अंतिम डेढ़ दशक में वे पंजाबी में लिखने लगे थे। पंजाबी के चोटी के प्रगतिशील अदीब गुरबख्श सिंह 'प्रीतलडी' और उनके परिवार से उनका विशेष स्नेह था। भारतीय साम्यवादी आन्दोलन के किंवदंती-पुरुष पी.सी. जोशी से उनकी मैत्री थी। वास्तव में कम्युनिस्ट आन्दोलन से उनका संबंध जीवन भर रहा। के. आसिफ की फिल्म 'हलचल' में वे जेलर का रोल कर रहे थे। उन दिनों कम्युनिस्ट होने के अपराध में वे जेल में थे और शूटिंग के लिए उन्हें पेरोल पर छोड़ा जाता था। उनकी इच्छा का आदर करते हुए उनकी अंतिम यात्रा और अंत्येष्टि का प्रबंध मुंबई के मजदूर संगठनों ने किया था। उनके सिर के नीचे लेनिन की पुस्तक रखी गई, उनका पार्थिव शरीर लाल झंडे में लपेटा गया और कामरेड बलराज लाल सलाम के नारों से उन्हें अलविदा कहा गया। उनके स्नेहियों में एक ओर असंख्य श्रमिक एवं सर्वहारा थे तो दूसरी ओर चेतन आनंद, अली सरदार जाफरी, कैफ़ी आज़मी, साहिर लुधियानवी, राजेन्द्र सिंह बेदी और कृष्ण चंद्र जैसे बुद्धिजीवी उनकी मित्र-मंडली की शोभा थे। उनके जैसे स्वस्थ, सफल और उमंग भरे व्यक्ति का अपेक्षाकृत अल्पायु में अवसान अनैसर्गिक-सा लगा था, पर यह भी एहसास था कि बेटा शबनम की असामयिक मृत्यु से वे अन्दर तक हिल गए थे। उनकी जीवन्त उपस्थिति संघर्षरत प्रगतिशील आन्दोलन के लिए भरोसेमंद संबल थी। जीवन की उत्कर्ष-वेला में उनके जाने से जो खला आ गयी, वह आज तक पूरी नहीं हो सकी है। बलराज जी के जीवन की अंतरंग झांकी उनकी कृतियों, उनके साथियों के संस्मरणों और उनके यशस्वी अनुज भीष्म साहनी की पुस्तक बलराज माई ब्रदर में मिलती है।

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली में 16 नवंबर, 1972 को बलराज साहनी को दीक्षान्त भाषण के लिए आमंत्रित किया गया तो कुछ हलकों में एक फ़िल्म अभिनेता को इतने 'स्कारलर ली' कार्य के लिए बुलाए जाने पर कटाक्ष किए गए। परंतु बहुमुखी प्रतिभा के धनी, मार्क्सवाद के दर्शन से प्रेरित, दलितों-मजदूरों के दोस्त, इस लोकप्रिय कलाकार ने समारोह में उपस्थित स्नातकों, प्रोफ़ेसरों, बुद्धिजीवियों और पत्रकारों का मन मोह लिया। मैंने उनके व्याख्यान का हिन्दी अनुवाद अनेक पत्रिकाओं में छपवाया था।

बहरहाल, आज की पीढ़ी बलराज के व्यक्तित्व के लेखन-पक्ष से परिचित न होगी। प्रायः कहा जाता है कि जवाहर लाल नेहरू यदि राजनीतिज्ञ न होते तो विश्वकोटि के इतिहासकार और लेखक होते। बेशक, भारतीय स्वाधीनता के लिए हुए आंदोलन और राजनीतिक नेता के रूप में उनकी उपलब्धियों की ओर भी आंखें नहीं मीची जा सकतीं, परंतु प्रगतिशील सोच के बुद्धिजीवियों को सदैव यह कसक रही कि उनकी अन्य व्यस्तताओं के रहते हम उनके कलम के पूरे जौहर न देख सके। यहां नेहरू से बलराज की लेखन-प्रतिभा की संभावनाओं की तुलना का उद्देश्य नहीं है, मगर उनके फ़िल्मों में जाने से प्रगतिशील साहित्य की कुछ क्षति अवश्य हुई। उन्हें स्वयं इस बात का शिद्दत से एहसास था कि फ़िल्मों के व्यस्त जीवन ने उन्हें बतौर लेखक एक सीमित दायरे में रखा और वे अनेक श्रेष्ठ पुस्तकों के अध्ययन से वंचित रहे। बलराज ने 1934 में उस समय के पंजाब के प्रतिष्ठित प्रसिद्ध गवर्नमेंट कॉलेज,

लाहौर से अंग्रेजी साहित्य में एम.ए. किया तो शुरू में वे अंग्रेजी में ही लिखते थे, पर 1935 में हिन्दी लेखन की ओर अग्रसर हुए और 1951 से पंजाबी साहित्य-सृजन की शुरुआत हुई। शान्ति निकेतन के अध्यापन काल में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी और गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर की छत्रछाया में साहित्यिक संस्कार ग्रहण किए। बी.बी.सी. लंदन में ब्रॉडकास्टर एवं अनाउन्सर रहे। उस युग के अधिकतर वाम और लोकान्मुख विचारों के कलाकारों की तरह जन नाट्य मंच (इप्ता) के भी सक्रिय सदस्य रहे। वहां उन्हें ख्वाजा अहमद अब्बास का सानिध्य मिला और जीवन की दिशा समझने में सहूलियत हुई। पहली पत्नी और संवेदनशील अभिनेत्री दमयन्ती की मृत्यु के बाद संतोष जी से दूसरा विवाह हुआ। बड़ी पुत्री शबनम से उन्हें विशेष स्नेह था, जो देखने में अपनी मां दमयन्ती की प्रतिकृति जैसी थी। शबनम का वैवाहिक जीवन सुखी नहीं था और बलराज एक भारतीय पिता थे, एक विवश पिता। सन् 1972 में शबनम की असमय मृत्यु से वे टूट गए और 13 अप्रैल 1973 को स्वयं चल बसे।

हिन्दी में लिखने की सलाह बलराज को चंद्रगुप्त विद्यालंकार ने दी थी और उनकी पहली कहानी शहजादों का ड्रिंक पं. बनारसी दास चतुर्वेदी ने विशाल भारत में प्रकाशित की थी। पंडित जी के बाद अज्ञेय जी विशाल भारत के संपादक हुए थे। बलराज ने जब अपनी दूसरी कहानी भेजी तो अज्ञेय जी ने कहानी लौटाते हुए हाशिए पर लिख भेजा कहानी की भाषा एकदम अशुद्ध है। इस पर मेहनत करने का अर्थ होगा कि आप पारिश्रमिक मांगें नहीं, पारिश्रमिक दें। इतनी शुष्क प्रतिक्रिया के बावजूद बलराज मायूस नहीं हुए। उन्होंने सैंतीस-अड़तीस वर्ष की आयु में फिल्म दुनिया में कदम रखा। तब तक वे मुख्यतः हिन्दी ही में लिखते थे। मगर उन्हें गुरुदेव रवीन्द्र नाथ ठाकुर द्वारा अपनी मातृभाषा पंजाबी में लिखने का परामर्श याद था और इस वजह से उनका बाद में अधिकांश लेखन पंजाबी में ही हुआ।

सन् 1930-40 का काल था और आजादी की लहर ज़ोरों पर थी। इन दिनों बलराज शांति निकेतन से सेवामार्ग चले गए थे और महात्मा गांधी की पत्रिका 'नई तालीम' के उप-संपादक के रूप में काम करने लगे थे। भीष्म साहनी भी बड़े भाई के पास सेवामार्ग चले आए। उनका अनुमान था कि अब बलराज ने स्वतंत्रता-संग्राम में भाग लेने का निश्चय कर लिया होगा। भीष्म ने जब पूछा कि क्या (अब) तुम राजनीति में सक्रिय रूप से भाग लेने लगोगे? तो बलराज का स्पष्ट, सुचिंतित उत्तर था, नहीं, मैं केवल कल्चरल काम करूंगा। हालांकि तब तक उनकी राजनीतिक प्रतिबद्धता किसी से छिपी नहीं थी। कई बार कुछ आन्दोलनों में उन्होंने बड़-चढ़ कर हिस्सा भी लिया, पर जीवन भर उनकी कर्मभूमि मुख्यतः सांस्कृतिक ही रही। भारत के स्वाधीनता आन्दोलन में कम्युनिस्टों की भूमिका किसी से कम न थी। यह बात महात्मा गांधी से छिपी हुई न थी। अस्त्र-शस्त्र भिन्न थे पर जुदा रास्ते होने पर भी पारस्परिक घृणा कभी मुखर नहीं हुई थी। कम्युनिस्ट पार्टी के तत्कालीन महासचिव पी.सी. जोशी ने गांधी के लिए राष्ट्रपिता शब्द का प्रयोग आदर के साथ किया था। जोशी की प्रेरणा से देश के चोटी के लेखक-कलाकार इप्ता और प्रगतिशील लेखक संघ में बड़े उत्साह से सम्मिलित हुए थे। वही प्रगतिशील लेखक संघ जिसके प्रथम सदस्य मुंशी प्रेमचंद थे। उनका प्रलेस के प्रथम अधिवेशन के सभापति पद से दिया, 1936 वाला भाषण, आज भी सांप्रदायिकता के घटाटोप में बिजली की

बलराज साहनी हिन्दी फ़िल्मों के अत्यंत संवेदनशील कलाकार थे। उनका जन्म 1 मई 1913 को रावलपिंडी में हुआ था। अभी वे 6 वर्ष के भी नहीं हुए थे कि 13 अप्रैल 1973 को मुंबई में उनका देहांत हो गया। उनके बहुरंगी आकर्षक व्यक्तित्व का आभास साहित्य और कला में रुचि रखने वाले लोगों को है। उनकी प्रारंभिक फ़िल्म 'दो बीघा जमीन' और अंतिम फ़िल्म 'गर्म हवा' में उनकी अदाकारी हिन्दी सिनेमा के इतिहास में अमर रहेगी। बीच में 'काबुली वाला', 'सीमा', 'अनुराधा' और 'हकीकत' जैसी अनेक फ़िल्मों में उन्होंने उत्कृष्ट अभिनय किया। हाल ही में प्रकाशित एक साक्षात्कार में प्रख्यात निर्देशक मृगाल सेन ने अफ़सोस प्रकट किया है कि उन्हें बलराज साहनी और दिलीप कुमार जैसे कुशल अभिनेताओं के साथ काम करने का मौका नहीं मिल सका। बलराज थियेटर से भी वाबस्ता थे। 'आखिरी शमा' नाम नाटक में जिसे कैफ़ी आज़मी ने लिखा और एम.एस. सथ्यु ने निर्देशित किया था, उन्होंने मिर्जा ग़ालिब का बहुत सजीव अभिनय किया था।

तरह कौंध जाता है और हमारे लिए प्रेरणा स्रोत है। उस ऐतिहासिक भाषण की ललकार आज भी मशाल की तरह हमारा दुर्गम पथ रोशन करती है।

बलराज जी ने भी इस क्रांति के संदेश के वाहक सांस्कृतिक मंचों में बड़-चढ़ कर हिस्सा लिया। रंगमंच और नुक्कड़ नाटक को उन्होंने अपने ढंग से योगदान दिया। पी.सी. जोशी के प्रेरणाप्रद व्यक्तित्व ने बलराज की मार्क्सवाद में निष्ठा को स्थायी रूप से मजबूत कर दिया। जब भीष्म साहनी 'नई कहानी' के संपादक थे तो उनके आग्रह पर बलराज भी 'गैर-जच्चाती डायरी' और 'फ़िल्मी सरगुज्जत' संग्रहों की अनेक रचनाओं को 'नई कहानी' में प्रकाशित किया गया था। बलराज अपना आलेख पंजाबी भाषा में ही भेजते थे, जिसे हिन्दी में अनूदित कर लिया जाता था।

इससे पूर्व बलराज की लोकप्रिय पुस्तक 'पाकिस्तानी सफ़र-नामा' छप चुकी थी और वे 'रूसी सफ़रनामा' पर काम कर रहे थे। भीष्म साहनी ने लिखा है कि पंजाबी भाषा और साहित्य के साथ उनका जुड़ाव उत्तरोत्तर गहरा होता जा रहा था। जब भी अवसर मिलता, वे पंजाब की यात्रा करते, श्री गुरशरण सिंह की नाटक मंडली में भाग लेते तथा पंजाब के विभिन्न शहरों तथा देहात में नाटक खेलते। बलराज का लिखा नाटक 'बापू क्या करेगा?' उनके मरणोपरांत, श्री सथ्यु के निर्देशन में उनकी बरसी के अवसर पर खेला गया था।

'क्या यह सच है बापू' नामक नाटक बलराज की मृत्यु के कुछ दिन पूर्व मुंबई इप्ता ने मंचित किया था। लेकिन थियेटर में उनका सर्वश्रेष्ठ अभिनय 'आखिरी शमा' में था, जिसमें उन्होंने मिर्जा ग़ालिब का रोल किया था। सोहराब मोदी की फ़िल्म 'मिर्जा ग़ालिब' के लिए पहले बलराज साहनी को ही लिया गया था। बाद में यह कहकर कि वे रोमेंटिक नाजुक दृश्य नहीं दे पाएंगे, यह रोल भारत भूषण को दिया गया। यह निर्माता की भूल थी। जिस तरह के प्रणय-दृश्यों की फ़िल्म में मांग थी, वे बलराज बेहतर ढंग से निभा सकते थे। 'सीमा', 'अनुराधा' और 'लाजवंती' जैसी फ़िल्मों में बलराज ने स्थापित लीक से हटकर खामोश प्रेम की अपने ढंग से प्रस्तुति की है। ऐसी कई फ़िल्में हैं जिनमें उनका निरूपाय के साथ स्निग्ध प्रेम एक विशिष्ट महक देता है। 'मिर्जा ग़ालिब' से हटाए जाने पर बलराज ने बहुत अपमानित महसूस किया था। खैर, क्या यह सच है 'बापू' मजेदार नाटक है। नाटक की पृष्ठभूमि उस शहर की है जहां 1967 के हिन्दू-मुस्लिम फ़साद हुए थे। इस बात

पर कटाक्ष है कि निहित स्वार्थ इस फ़साद का दोष भी नक्सलवादियों पर मढ़ने की कोशिश करते हैं। नाटक दो अंकों में है, जिसके प्रथम अंक के पात्रों के शरीर में गांधी, नेहरू, सुभाष और भगत सिंह की आत्माएं प्रवेश कर जाती हैं और फिर उनके बीच लंबी दिलचस्प बातचीत होती है। वास्तव में, यह हिन्दू-मुस्लिम सांप्रदायिकता का नए ढंग से, मस्तिष्क को आंदोलित कर देने वाला विवेचन है, जो इतिहास में बहुत पीछे जाकर, समस्या को समझने का स्फूर्तिदायक प्रयास है। यह परिचर्चा बड़ी रोचक है और इतिहास में झांककर, इन महापुरुषों के दृष्टिकोणों, अन्तर्विरोधों और समानताओं को समझने की एक कोशिश है। यह दिलचस्प है कि 20-25 वर्ष व्यतीत हो जाने पर वे अपनी पहले वाली मान्यताओं को किस रूप में देखते हैं।

बलराज ने कुछ कविताएं भी लिखीं, जो भावना की दृष्टि से तो स्तुत्य हैं, पर लगती हैं। फिर भी, इनमें वियतनाम की शौर्यगाथा पर लिखी कविता का उल्लेख किया जा सकता है। कहा गया है कि गुरु गोविन्द सिंह के उद्घोष 'चिड़िया से मैं बाज लड़ाऊँ' को वियतनाम की वीर जनता ने शक्तिशाली अमेरिका को पराजित करके, सार्थक कर दिखाया था। बलराज साहनी ने अनेक कहानियां लिखीं। 'ढपोरशंख' एक बाल कहानी है। यह एक पुरानी लोककथा पर आधारित है जो बचपन में उन्होंने अपनी मां से सुनी थी। इसे बलराज ने एक पंजाबी पत्रिका में छपवाया था। उनकी एक कहानी है 'एक मधुर याद'। कहानी कला की दृष्टि से इसमें कोई झोल नहीं दीखता। लेखक एक एक्टर है। उसकी मोटरसाइकिल के क्लच के तार का टांका एक ऐसे स्थान पर टूट जाता है, जहां वैल्विंग करने वाला कोई मिस्त्री नहीं मिलता। बहुत भटकने के बाद उसे गाड़ी एक अनाड़ी-से लगने वाले मिस्त्री के सुपुर्द करनी पड़ी। शाम तक गाड़ी दुरुस्त तो हो गई पर मध्यवर्गीय मानसिकता के कारण उसने मिस्त्री के विषय में जाने क्या-क्या धारणाएं बनाई और इस किस्से को जिस मार्मिक शैली में आगे बढ़ाकर, कहानी का उपसंहार किया गया है, उसका असर हृदय में काफी समय तक रहता है। यह बलराज की सभी कहानियों से बेहतर है।

कुछ उच्च-स्तरीय रेखाचित्र भी बलराज की लेखन-दीर्घा में मिलते हैं। एक में 1936 की दिल्ली का व्यंग्यात्मक चित्रण है। आज की भीड़भाड़ वाली, वाहनों और पुलों वाली, दूर तक फैली गुंजान दिल्ली का, उस दिल्ली से कोई तालमेल नहीं बैठता। पेशावरी दिल भी एक चुस्त रचना है, जिसमें पेशावर के लोगों का अच्छा खाका पेश किया गया है। 'पूरब के नाई' और 'रमजान' भी बेहतरीन रचनाएं हैं।

बलराज के गंभीर लेखों में 'मेरी जीवन दृष्टि' उनके जीवन-दर्शन को समझने में मदद करता है। इसमें उनकी मान्यताओं और प्रस्थापनाओं का भान होता है। मसलन, वे लिखते हैं कि अपने आपको नास्तिक कहकर मुझे वही संतोष मिलता है, जो किसी व्यक्ति को अपने दिल की बात बिना किसी छल-बल के कहकर होता है। इस स्वीकारोक्ति के बाद वे स्पष्ट करते हैं कि उन्हें इस बात में कोई भ्रम नहीं कि ईश्वर की कल्पना का कारण मनुष्य के ज्ञान की सीमा थी। मार्क्स और डार्विन ने प्रमाणित कर दिखाया कि मनुष्य और समाज का भी वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अध्ययन किया जा सकता है और सृष्टि पर भी वैज्ञानिक दृष्टिकोण लागू होते हैं, वही मनुष्य और समाज पर भी लागू किए जा सकते हैं। बलराज मार्क्सवाद को दर्शनशास्त्र की सर्वोच्च उपलब्धि मानते

हुए कहते हैं, 'मार्क्सवाद के अनुसार सृष्टि ही वास्तविक सत्य है, और उसे अपने विकास के लिए किसी बाह्य आध्यात्मिक शक्ति की आवश्यकता नहीं है। ....ऐसा नहीं है कि हम सृष्टि का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर चुके हैं, आज भी मनुष्य का ज्ञान सीमित है, पर सृष्टि के रहस्यों को जानने का एकमात्र साधन विज्ञान ही है।' अध्यात्मवादियों, योगियों और ज्योतिषियों के सृष्टि को समझने के दावे उन्हें हास्यास्पद लगते थे। उन्हें एहसास था कि कई बार बड़े से बड़ा वैज्ञानिक भी सृष्टि की अनन्तता और मनुष्य की नगण्यता से व्याकुल होकर किसी आध्यात्मिक शक्ति की कल्पना करने लगता है। लेकिन यह एक कमजोरी है, जो मनुष्य में किसी कारणवश आ जाती है। ...मौत, बुढ़ापा आदि डरावनी चीजें हैं। मैं नहीं कहता कि मैं इनसे डरता नहीं हूँ। फिर भी, किसी डर के वशीभूत मैं ईश्वर को कबूल नहीं कर सकता। ...बुद्ध, ईसा, मुहम्मद और नानक जैसे धार्मिक महापुरुषों और प्लेटो, सुकरात, अरस्तु, हीगल, नागार्जुन जैसे विचारकों ने मानव विकास के विभिन्न पड़ावों पर मनुष्य के चिंतन को आगे बढ़ाया है। पर इनमें से किसी को अवतार मानना उसके साथ अन्याय करना है।' बलराज मानते थे कि सच्चा प्रजातंत्र समाजवादी व्यवस्था के द्वारा ही संभव है, पर उस मंजिल पर पहुंचने के साधन देश की सभ्यता के अनुकूल होने जरूरी हैं। इस लेख में बलराज प्लेटो के रिपब्लिक और गांधी जी के अहिंसा के सिद्धांत की तह में जाते हैं, स्त्री-पुरुष संबंधों पर अपना नजरिया बताते हैं और फिर उसी विषय पर लौट आते हैं, जिससे यह लेख आरंभ किया था। मृत्यु को शोकपूर्ण घटना मानते हुए वे कहते हैं कि मरने के बाद मनुष्य पूरी तरह समाप्त हो जाता है। दूसरी दुनिया या पुनर्जन्म अदि कुछ नहीं होता। मेरे विचार से बलराज साहनी का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण लेख है 'जवाहरलाल नेहरू मेरी निगाह में', जो पढ़ने से ताल्लुक रखता है। इस लेख के बहाने बलराज ने भारतीय सभ्यता, संस्कृति और इतिहास का विस्तार से विश्लेषण किया है। किसी को लग सकता है कि वे गांधी और नेहरू के प्रति कुछ ज्यादा ही सहृदय हैं। उनकी कथित भूलों पर परदा डालने के लिए एक-से-एक तर्कों की झड़ी लगा देते हैं। मगर हम पूर्वाग्रह से उठकर, अपने मन में दशकों से बैठी शंकाओं और बार-बार सुनी और प्रचारित बातों से बने संस्कारों से बाहर आकर इस लेख को पढ़ेंगे तो हमारे उदार हृदयों में स्थितियों, व्यक्तियों और इतिहास के विभिन्न मोड़ों को देखने-समझने का या अंदाज विकसित होगा। अर्थात् यदि हमारा लक्ष्य एक है, हम सेक्युलर हैं, अपनी प्रतिबद्धता के प्रति ईमानदार हैं, यदि हम संवेदनशील हैं और एक ऐसे शोषणमुक्त समाज का स्वप्न देखते हैं, जिसमें साहित्य और कला का नैसर्गिक प्रस्फुटन हो, तो इतनी सारी बातों में सभ्य होने पर, हमसे यह अपेक्षा अनुचित न होगी कि हम विभिन्न दृष्टिकोणों को सुनने-समझने में संकोच से काम न लें। इस मानस के साथ यदि हम बलराज के इस लेख को पढ़ें तो हम अनेकशः स्थलों पर, एक उदारचेता सहिष्णु मन से इस लेख का रस ले सकेंगे। कहीं असहत होंगे तो कहीं हमारी सोच में नए आयाम जुड़ेंगे और विमर्श के लिए ताजादम होकर आगे बढ़ सकेंगे। इस लेख में बलराज भारतीय चरित्र के अहिंसा और सहनशीलता जैसे मूल्यों का सकारात्मक पहलू दिखाकर आगाह करते हैं कि 'यह सोचना मूर्खता होगी कि हमारे प्राचीन विरसे में सब कुछ अच्छा ही था। हमें भूलना नहीं चाहिए कि अहिंसावाद की परंपरा ने धर्म के नाम पर किए गए अनगिनत पाखंडों, अंध विश्व और बर्बर